इकाई 2: 'लोक' और 'संस्कृति'की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा:

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 'लोक' का अर्थ एवं परिभाषा
2.4 'संस्कृति' का अर्थ एवं परिभाषा
2.5 'लोक' और संस्कृति का अंतःसंबंध
2.6 सारांश
2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
2.8 अधिक जानकारी के लिए अध्ययन करें
2.9 अभ्यास-प्रश्न

2.1 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन से अध्येता—

- 'लोक' के अर्थ से अवगत हो सकेंगे।
- 'संस्कृति' के अर्थ को जानने में सक्षम होंगे।
- 'लोक' और 'संस्कृति' के अन्तःसंबंध के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- लोक-संस्कृति में निहित जनमानस की भावनाओं को समझ सकेंगे।
- लोक और संस्कृति की अवधारण को आत्मसात करने में सक्षम होंगे।

2.2 प्रस्तावना:

समाज में व्याप्त धर्म, आचार-विचार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ और विश्वास आदि में ही 'लोक'-संस्कृति के बीज निहित होते हैं। किसी क्षेत्र विशेष की 'लोक'-संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का सुलभ और सशक्त माध्यम साहित्य माना जाता है। साहित्य समाज का दर्पण है, जिसमें उसके विविध रूप प्रतिबिम्बित होते हैं। 'लोक' जीवन की विविध अनुभूतियाँ 'लोक'-मानस को प्रभावित करती हैं, और 'लोक'-मानस जीवन के विभिन्न पक्षों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा रहता है। यही किसी जाति की संस्कृति की

पृष्ठभूमि निर्मित करता है। अपने अतीत के जीवन को समझने के लिए 'लोक'-संस्कृति का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

'लोक' गीत और 'लोक' कथाएँ 'लोक'-संस्कृति को पुष्ट करने वाले प्रमुख तत्व हैं। इनके अध्ययन से समाज का वह स्वरूप उभरकर सामने आता है, जो विस्मृति की अनेक परतों में दब गया है। युग-विशेष का साहित्य तत्कालीन 'लोक' जीवन का सजीव प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है। समाज के विभिन्न प्रकार के चिंतन-मनन, रहन-सहन और आचार-विचार की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से होती है। इसी के द्वारा हम काल-विशेष अथवा कवि-विशेष के काव्य में 'लोक'-संस्कृति की अभिव्यक्ति का सम्यक् परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

2.3 'लोक' का अर्थ एवं परिभाषा:

सृष्टि में मानव के प्रादुर्भाव के साथ ही विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज की परिकल्पना का जन्म हुआ है। जीवन जीने की लालसा और बौद्धिक बल ने मानव को नयी सोच-समझ प्रदान की है। मनुष्य मन तथा बुद्धि के विकास एवं समष्टि के बीच जन्म लेने के निमित्त, प्रकृति से ऊपर उठने और अपने वैचारिक प्रभुत्व के बल पर उसे रुपान्तरित करने के प्रयासों के कारण संस्कृति को जन्म देता है। इस प्रकार वह संस्कृति का निर्माता भी है।

2.3.1 'लोक'का व्युपत्तिपरक अर्थ:

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लोक' (दर्शन) धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से हुई है। लट् लकार अन्य पुरुष एकवचन में इससे'लोकते' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है देखने वाला। इस प्रकार 'लोक'में उस साधारण जन-समाज को सम्मिलित किया जा सकता है, जो देखने के कार्य (क्रिया) में संलग्न होते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें जन-समाज द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रिया-कलापों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

2.3.2 प्राचीन वाङ्मय में 'लोक' शब्द:

'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इस शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में उपलब्ध होता है। 'वेद-उपनिषद', 'अष्टाध्यायी', 'नाट्यशास्त्र' तथा 'शतसाहस्री संहिता'जैसे प्राचीन ग्रंथों में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान' के अर्थ में किया गया है।ऋग्वेद में ही लोकसमाज की विराट कल्पना की गई है, वह पुरुष रूप ईश्वर है, उसके सहस्र मुख, सहस्र नेत्र और सहस्र पद हैं।'

यद्यपि वैदिक साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जनसाधारण' के अर्थ में हुआ है, तथापि वर्तमान में यह शब्द वैदिक संस्कृति के सीमित दायरे से आगे बढ़कर विस्तृत

अर्थ-क्षेत्र को ग्रहण कर चुका है। अब यह वैदिक एवं अवैदिक दोनों प्रकार के तत्वों का द्योतक बन गया है।'अष्टाध्यायी', 'नाट्यशास्त्र'तथा'महाभाष्य'आदि में 'लोक' शब्द का प्रयोगशस्त्रागार, वेदेतर और सामान्य जन के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अतोऽस्मि लोके वेदे च पृथितो सर्वोच्च: जैसे श्लोक से यह अवगत होता है कि भगवद्गीतामें 'लोक' और 'वेद' दोनों की समन्वित प्रतिष्ठा को महत्त्व दिया गया है तथा 'लोकशास्त्र' एवं 'लोक जन'को विशेष रूप से मान्यता प्रदान की गई है।

महर्षि व्यास ने 'लोक'के संबंध में एक नया दृश्य प्रस्तुत किया। प्रत्यक्षदर्शन लोकानां सर्वनिर्देशक भुवेन्नर: अर्थात् जो व्यक्ति 'लोक' को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है, वही उसे सम्यकरूप से जान सकता है। सम्राट अशोक के शिलालेखों में 'लोक'शब्द समस्त प्रजाजनों के हित के लिए प्रयुक्त हुआ है।'इसी प्रकार बौद्ध धर्म की प्रचार क्षमता से 'लोक'शब्द मानव मात्र के भाव से जुड़ा है। अर्थात् उसमें समस्त जन-साधारण की अनुभूतियों को समाहित किया गया है। विभिन्न शब्दकोशों में 'लोक'शब्द के विविध अर्थ दृष्टिगत होते हैं, जो निम्नलिखित हैं-

'अमरकोश' में 'लोक' के जगती, विष्टप, भुवन और जगत आदि अर्थ मिलते हैं। वामन शिवराम आप्टे ने 'लोक' को संसार, विश्व का एक भाग, पृथ्वी, भू-लोक, मनुष्य जाति, प्रजा, समूह, क्षेत्र, दृष्टि, वास्तविक स्थिति, प्रकाश जैसे अनेक अर्थों के रूप में लिया है।

डॉ. रामचन्द्र वर्मा 'लोक' शब्द को स्थान विशेष के लिए प्रयुक्त करते हैं जिसका बोध प्राणी को हो। उपनिषदों में 'इहलोक' और 'परलोक', निरूक्त में पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक' आदि के साथ-साथ अन्य अर्थों में संसार, जगत, प्रदेश, लोग, जन, समाज आदि अर्थके रूप में प्रयोग देखने को ममिलता है।

'लोक'शब्द के विभिन्न अर्थों पर दृष्टिपात करते हुए कहा जा सकता है कि यहशब्द सामान्य जन समूह का द्योतक है। अन्य अर्थों में किंचित स्थानों पर ही इसका प्रयोग हुआ है। आज भी इसका यही अर्थ अधिक प्रचलित है। 'लोक' शब्द को मानव-मात्र या मानव समूह के पर्याय रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इससे मानव की विविध अनुभूतियों का आत्मीयता के साथ बोध होता है। किन्तु क्षेत्र विशेष में 'लोक'शब्द की अपनी सीमाएँ भी हैं, जिन्हें लाँघने में उसे कठिनाई होगी। 'लोक' शब्द का अर्थ विशद् और विराट हैं। इसमें समस्त 'लोक' जीवन का सार छिपा है।

2.3.3 'लोक' शब्द की अवधारणा:

'लोक'शब्द के अर्थ का विस्तृत और व्यापक विवेचन पहले किया जा चुका है किन्तु अब प्रश्न है कि विभिन्न ग्रन्थों और विविध काल विशेष में 'लोक'शब्द की अवधारणा किस रूप में रही है? यह सर्व विदित है कि 'लोक'शब्द का प्रयोग प्राचीन वाङमय में मिलना प्रारम्भ हो गया था। संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों में यह शब्द अपने

विशद् और विविध अर्थो में विद्यमान है। हिन्दी साहित्य को भी इस शब्द के प्रयोग से अछूता नहीं कहा जा सकता है क्योंकि आज 'लोक'का महत्त्व व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में अनिवार्य हो गया है।यही कारण है कि आधुनिक साहित्य में 'लोक' शब्द पर पाश्चात्य और भारतीय मनीषियों ने आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है।

'लोकबोल इकताई' कहकर कबीर 'लोक'शब्द को सामान्य जन के लिए प्रयुक्त करते हैं क्योंकि संत कवि का संबंध 'लोकमर्यादा', 'लोक व्यवहार' तथा साधारण जन से ही है। तुलसी जैसे सगुण भक्त कवि 'लोक' को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं- कहीं स्थान के अर्थ में, कहीं वेद-परिपाटी के विपरीत 'लोक-परिपाटी' अर्थात् जन-साधारण परिपाटी के अर्थ में।

सूरदास ने अपने काव्य में 'लोक'शब्द को सर्वसाधारण के लिए प्रयुक्त किया है-

नंद-नंदन के नेह मेंह जिन 'लोक' लीप लोपी
'लोक' प्रतिहार पहरूआ तिनहुँ पै राख्यौ न परयोरी।

प्रेम के उन्मुक्त गायक कवि बोध के काव्य में 'लोकलाज', 'लोक'-भीत्ति' आदि का प्रयोग देखने को मिलता है-

लोक की लाज ओर सोच आलोक को
वरियै प्रीति के ऊपर दोऊ।

स्वच्छन्द कवि ठाकुर का काव्य भी 'लोक'शब्द को जनसमूह के रूप में प्रकट करता है- पंडित 'लोक' प्रवीनन को जोई चित्त हरै सो, कवित कहावै।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'लोक' शब्द के अर्थ में व्यापकता आ गई हैं। यहाँ इसका प्रयोग समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह 'चिन्तामणि भाग-1' में 'लोकमान्य', 'लोकसत्ता', 'लोक-व्यवहार', 'लोकधर्म', 'लोकमंगल' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। वे 'लोक' शब्द का उपयोग सामान्य जन और संसार-दोनों के लिए करते हैं। वर्तमान समय में 'लोक' शब्द के अर्थ-क्षेत्र का और अधिक विस्तार हुआ है। आज यह केवल ग्रामीण, अनपढ़, अशिक्षित समाज का द्योतक नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व के मानव के विविध किया-कलापों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, विचारों, विश्वासों, संस्कारों आदि को अभिव्यक्त करने वाला शब्द बन गया है। 'लोक'व्यक्ति की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति की अनुभूतियों को हृदयंगम किए हुए हैं। देश-काल की सीमाओं से ऊपर उठकर सम्पूर्ण विश्व के मानव का प्रतिनिधित्व करता है। कहने का तात्पर्य है कि यद्यपि अपने संकुचित अर्थ में 'लोक' साधारण जन अथवा लोकजीवन का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु अपने विस्तृत अर्थ में यह समस्त मानव जाति की अनुभूतियों को आत्मसात् किए हुए हैं।

2.3.4 'लोक' विषयक विभिन्न मत:

'लोक'की परिधि में वर्तमान समय में अनेक अर्थ समाविष्ट है। प्रत्येक अर्थ किसी न किसी तर्क को पुष्ट करता दिखाई देता है।'लोक'को परिभाषित करने का प्रयास केवल भारतीय साहित्यिक मनीषियों ने ही नहीं किया बल्कि पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस संबंध में खुलकर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। जीवन की गतिशीलता और उसकी चेतना को विद्वान ने 'लोक'से जोड़कर देखा है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। 'लोक' राष्ट्र का अमर स्वरूप है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है। 'लोक' की धात्री सर्वभूता माता पृथ्वी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।

'लोक' का संबंध गाँव एवं नगर की सरल और अकृत्रिम जीवन यापन करने वाली जनता के साथ जोड़ते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं- लोकशब्द का अर्थ 'जनपद'या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियों नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिकृष्ट रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

डॉ. सत्येन्द्र 'लोक' का संबंध अभिजात्य वर्ग से मानते हैं किन्तु इसे स्पष्ट करने के लिए वे सम्पूर्ण मानव जाति के मानसिक स्वरूप को लोकमानस, जनमानस, मुनिमानस में विभाजित करते हैं। 'लोक' लोकमानस का प्रतिनिधि है।'लोक' मानस वह मानसिक स्थिति है, जो आज आदिम मानस की परम्परा में है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है।

डॉ. श्याम परमार 'लोक' को नागरिक और ग्रामीण संस्कृति से जोड़कर देखते हैं- 'लोक' साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। शब्द वर्ग-भेद-रहित व्यापक एवं प्राचीन परंपराओं की श्रेष्ठराशि सहित अर्वाचीन सभ्यता-संस्कृति के कल्याण एवं विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में प्रायः नागरिक एवं ग्रामीण-दो भिन्न संस्कृतियों का उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। यह समाज का गतिशील अंग है।इसके विपरीत डॉ. कुंज बिहारी दास 'लोक' को वर्तमान में भी प्राचीनता की झलक देते लोगों के समूह से जोड़ते हैं - जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थिति में अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें 'लोक' कहा जाता है।

भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी 'लोक' के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इस शब्द को उन्होंने विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया है। पश्चिमी विद्वान 'लोक तत्व'के अर्थ में 'लोक' शब्द का विशेष अर्थ ग्रहण करते हैं। हिन्दी का 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' (Folk) शब्द का समानार्थी है। 'फोक'प्राचीन अंग्रेजी के folcसे व्युत्पन्न माना जाता है, जो जनसाधारण और राष्ट्र का द्योतक है। जर्मन और डच भाषा में इसके लिएvolk शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ. बार्कर लिखते हैं कि 'फोक'शब्द से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है, किंतु विस्तृत अर्थ में किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इसमें सम्मिलित किए जा सकते हैं। 'फोकलोर' के सन्दर्भ में 'फोक'शब्द का प्रयोग असंस्कृत लोगों के लिए किया जाता है। इसी अर्थ में 'लोक' शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं। इसके विषय-क्षेत्र के संबंध में मौरेट ने लिखा है-इसके अन्तर्गत उस समस्त जन-संस्कृति का समावेश माना जा सकता है, जो पौरोहित्य धर्म तथा इतिहास में परिणति नहीं पा सकी है, जो सदा स्वसंवर्द्धित रही है।

अपनी प्रगति जाँचें:

प्रश्न 1.डॉ. बार्कर ने 'फोक' शब्द का अर्थ किस प्रकार स्पष्ट किया है?

प्रश्न 2.'लोक' शब्द से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 3.कबीर ने 'लोक' शब्द को किस प्रकार परिभाषित किया है?

2.4 'संस्कृति' का अर्थ एवं परिभाषा:

2.4.1 'संस्कृति' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ:

'संस्कृति'शब्द 'सम् उपसर्ग, 'कृ'धातु एवं 'क्तिन' (स्त्री) प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है- 'भूषण भूत सम्यक् कृति' अर्थात् वह रचना या कार्य जो पूर्ण रूप से सुसंपन्न होकर स्वयं अलंकार (शोभा) बन गया हो। इस 'भूषण भूत सम्यक् कृति' या चेष्टा को ही संस्कृति कहा जा सकता है। संस्कृति शब्द का सबसे पहले-पहल प्रयोग यजुर्वेद' में देखने को मिलता है। एंगलिंग ने इसका अर्थ धार्मिक निष्ठा माना है। 'शतपथ ब्राह्मण' तथा 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार संस्कृति शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ परम्परागत अनुस्यूत संस्कार है और विद्वानों का एक वर्ग इसका अर्थ संशोधित अथवा परिष्कृत संस्कार के रूप में भी ग्रहण करता है। 'संस्कृति' शब्द का संबंध संस्कार से माना जाता है। संस्कार का अर्थ है- मलापनयन अर्थात् अशुद्ध तत्वों को दूर करना या परिष्कृत करना। संस्कृत एवं संस्कार दोनों समानार्थी शब्द हैं।

सामान्य बोलचाल की भाषा में संस्कृत शब्द सुन्दर, रुचिकर, कल्याणकारी और परिष्कृत व्यवहार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए कल्चर (Culture)शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'कल्चर' शब्द लैटिन भाषा के 'कोलरे' धातु से निष्पन्न 'कुल्तुरा'शब्द से बना है, जो अंग्रेजी भाषा में पशुपालन तथा कृषि के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। संस्कृति के अर्थ में इस शब्द की प्रतिस्थापना का श्रेय आंग्ल विद्वान टाइलर को है। उनकी दृष्टि में कल्चर (Culture) वह जटिल तत्व है, जिसमें ज्ञान, रीति-रिवाज, नीति, कानून तथा आदतों का समावेश है और जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है।

संस्कृति या कल्चर शब्द के अर्थ में व्यापकता और संस्कृति का भाव समाविष्ट है। वृहद हिन्दी-कोश में संस्कृति शब्द की व्यापकता और शुद्धि, सुधार परिष्कार, निर्माण, पवित्रता, साज-सजावट, उद्योग, आचरणगत परंपरा, रीति-रिवाज आदि अर्थदिए गए हैं। इसी प्रकार भाषा शब्द-कोश में संस्कृति शब्द के शुद्धि, सफाई, सुधार, संस्कार, सजावट, सभ्यता, परिष्कार आदि अर्थ दिए गए हैं।

प्रामाणिक शब्द कोश में 'संस्कृति' शब्द के अर्थ इस प्रकार दिए गए हैं-शुद्धि, सफाई, संस्कार, सुधार, किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र की वे सब बातें- जो उसके मन रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में विकास का सूचक होती है।

श्री वी.एस. आप्टे ने संस्कृत-इंग्लिश कोश में 'संस्कृति' के अर्थ बताए हैं- सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना, पवित्र करना, मन्त्रों द्वारा पवित्र करना, प्रशिक्षित करना आदि।

सर एम. मोनियर विलियम ने अपने 'संस्कृत-इंग्लिश' कोश में 'संस्कृति' शब्द को तैयार करना, तैयारी, परिष्कार पूर्णता आदि अर्थ दिए हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास के 'हिन्दी शब्द सागर' में 'संस्कृति' शब्द रहन-सहन की रूढ़ि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

2.4.2 'संस्कृति'शब्द की अवधारणा:

'संस्कृति'अत्यन्त सूक्ष्म तत्व है। यह ब्रह्म की भाँति अनिर्वनीय है। जिस प्रकार 'ब्रह्म'के स्वरूप और सत्ता विषयक वेदों से लेकर आद्यावधि विचार-विमर्श होता रहा, परन्तु आज तक उसका कोई निश्चित स्वरूप निर्धारित नहीं हो पाया। उसी प्रकार 'संस्कृति'के संबंध में भी अनेक विद्वानों में मतभेदबना हुआ है, उसका कोई निश्चित स्वरूप अभी तक सामने नहीं आया है।

'संस्कृति'की अजस्रधारा वेदों से भी प्राचीन हैक्योंकि वेदों में मानव जीवन को सुसंस्कृत तथा समाज के अनुरूप बनाने की भावना की आधार भूमि उनकी रचना के पूर्व की संस्कृति है। प्राचीन साहित्य में डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने अपने ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति का विकास वैदिक धारा के अन्तर्गत 'संस्कृति'का एक उद्धरण दिया है, जो वैदिक युग में 'संस्कृति'शब्द के प्रयोग और उसके स्वरूप पर प्रकाश डालता है।

कस्यादि देशस्य समाजस्य वा विविधजीवन व्यापारेषु सामाजिकसंबंधेषु वा मानवता त्वदृष्टया प्रेरणाजागां तत्वदादर्शनं समाष्टिरेश्च संस्कृति। इस उद्धरण के अनुसार किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों अथवा सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले सभी आदर्शों की समष्टि ही संस्कृति है। अर्थात् वैदिक वाङ्मय में 'संस्कृति' को जीवन को प्रेरित करने वाले विभिन्न कारकों का समुच्चय माना गया है। किसी समाज विशेष के लोग जो हजारों वर्षों तक जिस जीवन पद्धति का उपयोग करते हैं, चिन्तन-मनन, धर्म-कर्म, राजकाज आदि चलाते रहते हैं, वे सभी हमारी संस्कृति का निर्माण करती हैं। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के साये में पनपा आदिकालीन साहित्य भी'संस्कृति' को किसी न किसी रूप में प्रकट करता है। 'पृथ्वीराज रासो' सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। यह रचना युगीन जन-जीवन रीति-रिवाज, विवाह, नृत्य संगीत, आमोद-प्रमोद की झाँकी प्रस्तुत कर युगीन संस्कृति का ही निदर्शन कराती है। भक्ति रस में डूबा भक्ति साहित्य भी 'संस्कृति' का आदर्श प्रस्तुत करता है। यहाँ'रामचरित मानस', 'पद्मावत्', कबीर के 'पद', 'सूरसागर' आदि सभी महत्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन 'संस्कृति' को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रकट करती हैं। रीतिकालीन दरबारी साहित्य भी सांस्कृतिक छठा बिखेरने में पीछे नहीं रहा। आधुनिक साहित्य में 'संस्कृति' भारतीय और पाश्चात्य दोनों अर्थों में विद्यमान है। भारतीय 'संस्कृति' के अवनति के चक्र को भी आधुनिक साहित्य ने बखूबी आवाज दी है।

'संस्कृति'जीवन-दर्शन का मुख्य आधार होती है। यह समाज के विकास को निर्देशित करने वाली प्राकृतिक स्थिति है, एक भावात्मक तत्व है, जो हार्दिक प्रेरणा से ग्रहीत बाह्यचारों में अभिव्यक्त होता है। संस्कृति को व्यक्त और अव्यक्त अथवा आंतरिक एवं वाह्य दो रूपों में देखा जा सकता है। व्यक्त संस्कृति में रीति, प्रथा, आचार, कला और विभिन्न प्रकार के शिल्प आदि को समाहित किया जाता हैऔर अव्यक्त 'संस्कृति'इन रूपों में मूर्त होने वाले मूल्यों और प्रयोजनों का समाहार है। 'संस्कृति' हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान का आईना होती है। लालचन्द प्रार्थी लिखते हैं-देश और उसके लोगों की परम्पराओं और अनुश्रुतियों, उनके रीति-रिवाजों, उनकी भाषा, कला, यहाँ तक कि समूचे रूप में उनकी 'संस्कृति'से न केवल उनका अतीत प्रकाश में आता है, बल्कि लोगों की विचारधाराओं से उनके भविष्य के बारे में भी अन्दाजा लगाया जा सकता है और वास्तविकता यह है कि जनता की संस्कृति की कहानी किसी देश की असल कहानी होती है। संस्कृति मनुष्य के विकासात्मक जीवन-यापन की रीति का नाम है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक 'संस्कृति'की अवधारणा बदलती रही है। अमृतलाल मालवीय 'संस्कृति'को मानवीय आचरण का द्योतक मानते हैं।

वास्तव में संस्कृति किसी भी सभ्यता की आत्मा कही जा सकती है जिससे उसके सम्पूर्ण संस्कारों का बोध होता है। आज संस्कृति की अभिव्यक्ति भाषा, कला, धर्म, शिक्षा-विज्ञान, फिल्म, समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि के माध्यम से होती है, जो

संस्कृति के विकृत, खण्डित रूप को भी भली-भाँति प्रकट करते हैं। मन्दिरों से मूर्ति चुराना, तीर्थ स्थलों, पर असामाजिक तत्वों का होना आदि बातें हमारी आधुनिक अपसंस्कृति के ही द्योतक हैं। कहा जा सकता है कि हमारी पवित्र 'संस्कृति'की अवधारणा धीरे-धीरे बदल रही है, जिसे युगीन साहित्य अभिव्यक्त करता आ रहा है।

2.4.3 'संस्कृति' विषयक विभिन्न मत:

'संस्कृति'शब्द अपने आप में विविध अर्थों को छिपाए हुए हैं। यही कारण है कि विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। साहित्यकारों ने संस्कृत में 'सत्यम्शिवम्सुन्दरम्' के दर्शन दिए हैं। विद्वानों ने उसे कई रूपों में देखा है। ठीक **जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी** के अनुरूप की तरह। 'संस्कृति'ने विभिन्न अर्थों से भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया है। विद्वानों का एक वर्ग-मन, आचार, और रुचियों को परिष्कृत करना या माँजना ही संस्कृति मानता है, तो दूसरा वर्ग शिक्षा तथा अनुशासन द्वारा मनुष्य के सर्वांगीकरण विकास को संस्कृति मानता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति के संबंध में सभी विद्वानों का मत एक समान नहीं है। वे अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार 'संस्कृति'को परिभाषा करते हैं।

श्री महादेव शास्त्री 'दिवेकर'-सम्यक कृतियों और परम्परा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को संस्कृति कहते हैं।

डॉ. हरवंशलाल शर्मा-किसी विशिष्ट समाज के द्वारा दीर्घ सामाजिक अनुभवों के आधार पर सद आचरण के जो मापदंड स्थिर कर दिए जाते हैं, वे जब सूक्ष्म भावनात्मक रूप में परिणत होकर समाज के दैनिक जीवन में अनायास ही व्यवहृत होने लगते हैं, तो 'संस्कृति'का नाम पाते हैं।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र-संस्कृति मानव जीवन के विचार, उच्च आचार का शुद्धिकरण या परिमार्जन है। वह है मानव जीवन की सजी-सँवरी हुई अन्तःस्थिति। वह है मानव समाज की परिमार्जित मति, रुचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-"मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।नाना ऐतिहासिक परम्पराओं के भीतर से गुजरकर और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न- भिन्न समुदायों ने उस महान मानवीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है।

श्री राजगोपालाचारी -"किसी भी जाति एवं राष्ट्र में शिष्ट पुरुषों के विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त है, उसी का नाम संस्कृति है।

डॉ. नगेन्द्र- संस्कृति मानव-जीवन की वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृत राग-द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है।

स्मरणीय बिंदु:

1. भारतीय लोक-संस्कृति अत्यंत व्यापक, समृद्ध और बहुआयामी है, जिसमें इतिहास, भूगोल और प्राचीन सभ्यताओं की झलक मिलती है।
2. इसकी जड़ें सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर वैदिक युग, बौद्ध काल और स्वर्ण युग तक विस्तृत हैं।
3. भारत की विविध भाषाएँ, परंपराएँ, रीति-रिवाज और जीवन-शैली मिलकर सांस्कृतिक विविधता का निर्माण करती हैं।
4. विभिन्न क्षेत्रों में भिन्नता के बावजूद रहन-सहन, वेश-भूषा, भोजन, कला और भाषा को एक अदृश्य एकता का सूत्र आपस में जोड़ता है।
5. लोक-संस्कृति भारतीय समाज की सादगी, आस्था, भावनाओं और रचनात्मकता की प्रतीक है, जो लोकगीतों, लोककथाओं और लोककलाओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रहती है।

भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य मनीषियों ने भी 'कल्चर' अथवा 'संस्कृति'के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं-

पश्चिमी विद्वान रेडफील्ड लिखते हैं-संस्कृति परम्परागत समझा-बूझों का संगठित समूह है, जो कला एवं कला-कृतियों में परिलक्षित होता है। तथा मानव समूह की विशेषताएँ प्रकट करते हुए परम्परागत रूप में मान्य होता है।

श्री एफ. जे. ब्राउन -संस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का एक ढाँचा है, जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। पर्यावरण प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार का हो सकता है, किन्तु प्रमुख रूप से यह ढाँचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जाँचें:

प्रश्न 4.'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ लिखिए।

प्रश्न 5.आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'संस्कृति' शब्द को किस प्रकार परिभाषित किया है?

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई संस्कृति की परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानव-समूह द्वारा युग-युग से संचित किए गए संस्कारों को आगे बढ़ाना और उन्हें एक निश्चित दिशा प्रदान करना ही संस्कृति है। 'संस्कृति' धीरे-धीरे विकसित होती है। शिक्षा के माध्यम से जो संस्कार बीज-रूप में मानव-जीवन में डाले जाते हैं, वही संस्कृति का आधार-तत्व और उसकी प्रथम अवस्था होते हैं। इन

बीजों को फलदार वृक्ष में परिवर्तित कर मानव-जीवन को सुदृढ़ और समृद्ध रूप प्रदान करना संस्कृति की अंतिम अवस्था कही जा सकती है।

वास्तव में 'संस्कृति' की ऐसी कोई सुगठित और सर्वसम्मत परिभाषा संभव नहीं है, जिसमें उसके सभी आयाम पूर्णतः समाहित हो सकें। तथापि, उपर्युक्त परिभाषाओं को समेकित रूप में देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 'संस्कृति' वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मानव-जीवन को परंपरा-स्वरूप प्राप्त संस्कारों का परिष्कार किया जाता है, उन्हें समृद्ध समाज के निर्माण हेतु गतिशील बनाया जाता है तथा समस्त मानव-समूह के आचार-व्यवहार में उन्हें स्वाभाविक रूप से आत्मसात कर लिया जाता है। इसका बोध 'लोक'-जीवन की विविध शैलियों और अभिव्यक्तियों से होता है।

2.5 'लोक' और संस्कृति का अंतःसंबंध:

'लोक' और 'संस्कृति' का पृथक-पृथक अनुशीलन करने पर सूक्ष्म वैषम्य हमारे समक्ष प्रकट होता है, जो भिन्न होते हुए भी अंतःसंबद्ध है। संस्कृति 'लोक' से ही अपना आधार ग्रहण करती है; अर्थात् अपनी सत्ता के लिए उसे 'लोक' रूपी जन-समुदाय प्राप्त होता है। इसके विपरीत, 'लोक' संस्कृति का आश्रय लिए बिना भी अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखता है। यदि 'लोक' को सर्वसाधारण, विशेषतः ग्रामीण जन-समूह के रूप में देखा जाए, तो संस्कृति उस जन-जीवन के परिष्कार और संस्कार-प्रक्रिया का नाम कही जा सकती है।

'लोक' के कुछ व्यवहार सर्वव्यापक होते हैं, जैसे-लड़ाई, झगड़ा आदि; किन्तु संस्कृति विविधताओं का पोषण करती है। वह देश, प्रदेश, जाति और काल-विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित होती है। जैसे-ग्रामीण संस्कृति शहरी संस्कृति से भिन्न होती है और भारतीय संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति से।

संस्कृति 'लोक' का प्रतिबिंब अवश्य है, परंतु वह उसका भविष्य निर्धारित नहीं करती; बल्कि 'लोक' ही संस्कृति को उसके चरमोत्कर्ष तक पहुँचा सकता है या उसे पतन की ओर भी ले जा सकता है। इस प्रकार, संस्कृति का भविष्य अंततः 'लोक' के हाथों में निहित रहता है।'लोक' और 'संस्कृति' में एक ओर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरी ओर गहरा संबंध भी विद्यमान है। संस्कृति प्रायः राजनीतिक और आर्थिक निर्णयों से दूर रहती है, किन्तु उन निर्णयों की आधारशिला 'लोक' ही होता है।

'लोक' किसी भी देश की आंतरिक सुंदरता और स्वाभाविक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि संस्कृति उसके बाह्य सौंदर्य का रूप मानी जा सकती है, जो जीवन को परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाती है। 'लोक' को एक भौगोलिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि उसका प्रकृति से घनिष्ठ संबंध होता है; वहीं संस्कृति एक भावात्मक तत्व है, जो 'लोक' को आंतरिक रूप से जोड़ती है।संक्षेप में,

संस्कृति एक प्रवाहमान धारा की तरह निरंतर गतिशील रहती है, जबकि 'लोक' में अपेक्षाकृत स्थायित्व का बोध होता है।

'लोक' और 'संस्कृति' में कुछ भिन्नताएँ होते हुए भी दोनों के बीच गहरा साम्य विद्यमान है। दोनों का अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे पर आश्रित है। 'लोक' के मानव की चित्तवृत्तियों को शुद्ध एवं परिष्कृत करने में संस्कृति की विशेष भूमिका होती है, वहीं संस्कृति को ठोस और जीवंत स्वरूप प्रदान करने में 'लोक' का योगदान महत्त्वपूर्ण है।संस्कृति की चिरंतन शक्ति के बीज 'लोक' में ही निहित रहते हैं। 'लोक' में प्रचलित विश्वास, परंपराएँ और रीति-रिवाज उसकी गहरी मानवीय अनुभूतियों से जुड़े होते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति संस्कृति के माध्यम से होती है। संस्कृति जिन संस्कारों से संबद्ध है, उनका पोषण भी 'लोक' में ही होता है। इस प्रकार, संस्कृति 'लोक'-जीवन में रची-बसी होती है और उसके समग्र जीवन को पुष्ट, सुसंस्कृत तथा अनुप्राणित करती है।

निःसंदेह, 'लोक' और 'संस्कृति' दोनों का मानव से गहरा संबंध है। ये दोनों मानवीय सभ्यता के अभिन्न अंग हैं। मानव को प्रकृति से पृथक एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करने तथा उसकी पाशविक प्रवृत्तियों को संयमित करने में संस्कृति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।किसी भी साहित्यकार की रचना उसके समकालीन परिवेश का दर्पण होती है; अर्थात् साहित्य अपने युग के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों की झलक प्रस्तुत करता है। साहित्य का मूल आधार जन-जीवन है, और 'लोक'-संस्कृति भी मानव के विविध जीवन-व्यापारों एवं क्रियाकलापों से गहराई से जुड़ी होती है।आज व्यक्ति का जीवन जिन विविध धाराओं से होकर प्रवाहित होता दिखाई देता है, उनका मूल स्रोत 'लोक'-संस्कृति ही है। 'लोक'-संस्कृति ग्रामीण और नगरीय-दोनों प्रकार के जीवन को प्रतिबिंबित करती है, और यही प्रतिबिंब साहित्य के माध्यम से भी साकार रूप में अभिव्यक्त होता है।

वास्तविक अर्थों में साहित्य और 'लोक'-साहित्य एक महत्त्वपूर्ण बिंदु पर आकर अभिन्न प्रतीत होते हैं। एक ओर किसी भी काल, जाति या देश-विशेष का साहित्य उसकी समग्र मानव-संस्कृति को अभिव्यक्त करता है, तो दूसरी ओर विविध कथाओं, उपकथाओं और पात्रों के माध्यम से उस युग के जन-जीवन की 'लोक'-संस्कृति भी सजीव रूप में उद्घाटित होती है।

प्राचीन काल में संतों, कवियों और महात्माओं द्वारा रचित साहित्य 'लोक'-कल्याण की भावना से अनुप्राणित रहा है, जिसमें 'लोक'-संग्रह और 'लोक'-संस्कृति के विविध तत्वों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। फलस्वरूप, प्राचीन ग्रंथ हमारे 'लोक'-जीवन और संस्कृति के उन अमूल्य तत्वों का विशद विवेचन करते हैं, जो आज भी हमारी सांस्कृतिक चेतना को समृद्ध करते हैं।

2.6 सारांश:

'लोक' शब्द का प्रयोग केवल संस्कृत साहित्य में ही विभिन्न अर्थों में नहीं हुआ है, अपितु परम्परा के अनुसार हिन्दी साहित्य में भी यह शब्द अनेक अर्थों को अपने भीतर समाहित किए हुए है। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन 'रासो' तथा लौकिक साहित्य में 'लोक'-जीवन की विविध छवियाँ परिलक्षित होती हैं।अमीर खुसरो की पहेलियाँ औरविद्यापति की पदावलियों में प्रयुक्त 'लोक' शब्द सामान्य जन तथा उसके विविध 'लोक'-विश्वासों को अभिव्यक्त करता है।

संत साहित्य में 'लोक' शब्द कतिपय स्थलों पर समस्त संसार का द्योतक है, तो अनेक स्थानों पर 'मृत्युलोक' अथवा पृथ्वी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है-"नाव मेरी डूबी रे भाई, ताते चढ़ी 'लोक' बढ़ाई।" (संत कबीर)कहीं-कहीं 'लोक' शब्द वेद के प्रतिकूल 'लोक'-परम्परा का अर्थ भी प्रदान करता है। इस अर्थ में 'लोक' शब्द का प्रयोग संत-काव्य में अनेक स्थलों पर हुआ है।

इस प्रकार 'संस्कृति' शब्द के विविध अर्थ इसे मानव की जीवन-पद्धति, आचार-व्यवहार आदि से सम्बद्ध उन सभी पक्षों से जोड़ते हैं, जो उसके सर्वांगीण विकास-शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक-में सहायक होते हैं। संस्कृति मनुष्य की आत्मा को परिष्कृत करने वाली प्रक्रिया है; यह उसकी आत्मिक शक्तियों का विकास करती है और आत्मशुद्धि के माध्यम से उसके गुणों को उत्कृष्ट बनाती है। संक्षेप में, संस्कृति सामाजिक परम्परा से प्राप्त चिंतन, अनुभव और व्यवहार की समस्त रीतियों की समष्टि है।

लोकसंस्कृति, 'लोक' और 'संस्कृति' का सम्मिलित रूप है। किसी युग-विशेष की संस्कृति वहाँ के 'लोक' में ही निहित रहती है। एक परिष्कृत, आदर्श और सुसंस्कृत 'लोक' की कल्पना संस्कृति के अभाव में संभव नहीं है। 'लोक' और 'संस्कृति' दही और मक्खन के समान एक-दूसरे में समाहित हैं। दही को मथकर उससे मक्खन निकाला जा सकता है, किन्तु सामान्य दृष्टि से बिना मथे दही में मक्खन का अस्तित्व स्पष्ट नहीं होता।अर्थात् 'लोक' और 'संस्कृति' भी इसी प्रकार एक-दूसरे में रचे-बसे हैं। गहन अध्ययन और चिंतन-मनन के द्वारा ही इनके बीच सूक्ष्म अंतर को समझा जा सकता है।

2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा):

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: डॉ. बार्कर लिखते हैं कि 'फोक'शब्द से सभ्यता से दूर जीवन यापन करने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है किन्तु विस्तृत अर्थ में किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इसमें सम्मिलित किए जा सकते हैं।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: 'लोक'में उस साधारण जन-समाज को सम्मिलित किया जा सकता है, जो इस 'देखना कार्य (क्रिया) में संलग्न होते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें जन-समाज द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रिया-कलापों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: 'लोक'-बोल इकताई' कहकर कबीर 'लोक'शब्द को सामान्य जन के लिए प्रयुक्त करते हैं क्योंकि सन्त कवि 'लोक' मर्यादा, 'लोक' व्यवहार तथा साधारण जन से ही संबंध रखते थे।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर:'संस्कृति'शब्द 'सम् उपसर्ग, 'कृ'धातु एवं 'क्तिन' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ है- भूषण भूत सम्यक् कृति। इस भूषण भूत सम्यक् कृतिया चेष्टा को ही संस्कृति कहा जा सकता है।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'संस्कृति'के विषय में लिखते हैं- "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।" उनका मानना है कि नाना ऐतिहासिक परम्पराओं के भीतर से गुजरकर तथा भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न-भिन्न समुदायों ने उस महान मानवीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है।

2.8 अधिक जानकारी के लिए अध्ययन करें:-

- परमार, डॉ. श्याम.(1954), भारतीय लोकसाहित्य. नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन।
- राय, बाबू गुलाब.(1974-75). भारतीय संस्कृति. ग्वालियर:रवीन्द्र प्रकाशन।
- कुमार, जैनेन्द्र.(1979). साहित्य और संस्कृति. नई दिल्ली:पूर्वोदय प्रकाशन।
- पांडे, डॉ.त्रिलोचन.(1978). लोकसाहित्य का अध्ययन. इलाहाबाद:लोकभारती प्रकाशन।
- उपाध्याय,डॉ.कृष्णदेव.(1957).लोक-साहित्य की भूमिका. इलाहाबाद:साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड।
- उपाध्याय,डॉ.कृष्णदेव.(2014).लोक-संस्कृति की रूपरेखा.इलाहाबाद:लोकभारती प्रकाशन।
- गौतम, सुरेश.(2008). लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति. दिल्ली:संजय प्रकाशन।
- नारायण, बद्री.(2014). लोक-संस्कृति और इतिहास. इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन।
- शुक्ल, जयश्री जैन.(2014). लोकसाहित्य की प्रासंगिकता. दिल्ली:भवना प्रकाशन।
- उनियाल, राजेश्वर. (2014). हिंदी लोक साहित्य का प्रबंधन, दिल्ली:कल्पना प्रकाशन।

2.8 अभ्यास-प्रश्न:

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है- यह कथन किस विद्वान का है?
2. डॉ. बलदेव ने संस्कृति को किस प्रकार परिभाषित किया है?
3. संस्कृति को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए।
4. संस्कृति शब्द का प्रयोग सबसे पहले किस में दृष्टिगोचर होता है?
5. डॉ. श्याम परमार ने 'लोक' शब्द को किस प्रकार स्पष्ट किया है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. लोक का अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. लोक विषयक विभिन्न विद्वानों के मत को व्याख्या करते हुए अपने विचार को प्रकट कीजिए।
3. संस्कृति का अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
4. संस्कृति विषयक विभिन्न विद्वानों के मतों की व्याख्या करते हुए अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. 'लोक' और संस्कृति' के अंतःसंबंध को अपने शब्दों में लिखिए।
6. 'लोक' और 'संस्कृति' दोनों का मानव से गहरा है संबंध है- इसकथन की व्याख्या कीज



This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/